REVIEWS OF LITERATURE
ISSN: 2347-2723
IMPACT FACTOR : 3.3754(UIF)
VOLUME - 5 | ISSUE - 7 | FEBRUARY - 2018

उत्तरी हिमाचली लोक –चित्रों का तकनीकी स्वरूप एवं कार्यकुशलता तथा शिल्पकलाएं

डॉ. चित्रलेखा सिंह[1], रचना शर्मा[2]
[1]शोध निर्देशक, [2] शोधकर्त्री, ललित कला विभाग, आगरा कॉलेज
आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

हिमाचल प्रदेश के चित्रों में कला की सार्वभैमिकता मुखरितम हुई है। इसमें भारतीय आत्मा की काव्यत्मक अभिव्यक्ति है इनका प्रकृति – चित्रण अनूठा है ओर रूप चित्रण सजीव है। प्रेम का जैस अपूर्व, अलैकिक ओर भावपूर्ण निरूपण इन चित्रों में हुआ है, वैसा शायद ही किसी अन्य कलाशैली में हुआ हो। इनकी लायात्मकता में ब्रह्ममण्ड की गति की प्रतिध्वनि है। इन चित्रों में देश का वर्तमान ओर अतीत दोनों हैं परंतु साथ में ये देशातीत भी हैं प्रेम किसी एक जाति वर्ग, समाज या देश की एकान्ति थाती नहीं है। अतः प्रेम को अंकित करने वाले ये चित्र भी समस्त मानव समाज की संपति है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में उत्तरी हिमाचली लोक कला में प्रयुक्त होने वाली चित्रण सामग्री, चित्रण की विधि, खनिज रंगों, निर्माण की स्थानीय पद्धतियों के साथ–साथ हिमाचल की शिल्प कलाओं का भी वर्णन किया गया है।

सांकेतिक शब्द–लोक कला, चित्रकला, चित्रण, पद्धतियां।

प्रस्तावना

चित्रकला क्या है? इसका विवेचन देशी– विदेशी विद्वानों ने बड़े विस्तार से किया है। जब भाषा का जन्म नहीं हुआ था, मनुष्य अपने आस –पास के प्राणियों की ध्वनियों का अनुसरण किया करता था। इसी तरह आस– पास की हलचल को अभिनय के माध्यम से सांकेतिक करता था। अभिनय और ध्वनियों के माध्यम से मनुष्य के भाव अभिव्यक्त होते थे, परंतु अंधेरे मे इस माध्यम का प्रयोग नहीं हो सकता था।किसी अनुपथित व्यक्ति को कुछ बताने की जरूरत पड़ने पर चित्र खींचकर संदेश छोड़ा जाता था। कभी –कभी समय के अभाव के कारण संक्षेप में चिन्हों को चित्रित कर देता था। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि विचारों की अभिव्यकित के लिए ध्वनियों ने भाषा को जन्म दिया और चित्रकला लिपि के रूप में विकसित हुई।

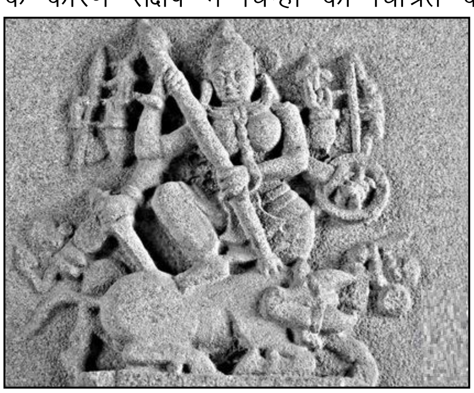

रचना और निर्माण करना मनुष्य की सहज वृति है। यों तो पशु, पक्षी भी कुछ न कुछ बनाते है। रचना की सहज प्रवृति से ही कला का जन्म होता है। इसलिए कला मनुष्य के लिए जन्मजात और आदिम प्रवृति हैं अतः थोड़ा या बहुत सभी मनुष्यों में कलात्मक स्वभाव और रूचि रहते हैं।

ललित कलाओं में भारतीय काव्यशास्त्रियों ने मात्र तीन कलाओं का उल्लेख किया हैं वास्तु संगीत और काव्य। चित्रकला ओर मुर्तिकला को वास्तु की उपजीव्य कला मान लिया हे जबकि

पाश्चात्यों ने इन दोनों को भी अलग महत्व देते हुए पाँच कलाओं की गणना की है।

लोक–चित्रों का तकनीकी स्वरूप एवं कार्यकुशलता

पौराणिक काल में कला विकसित थी और कलाकारों ने भावों की अभिव्यक्ति हेतु भिन्न– भिन्न माध्यमों को अपनाया। चित्र शिल्प ग्रंथ के अनुसार – ईंट–चूर्ण एवं एक– तिहाई मिट्‌टी, गुग्गुल, मोम, महुआ, गुड़, कुसुम का फूल और इन सबके बराबर तेल मिलाकर आग पर पकाया हुआ एक– तिहाई चूना, दो अंश बेल का गूदा और बालू मिलाकर चमड़े के पात्र में रखे हुए पानी में उस मिश्रण को एक मास तक भिगोया जाता है। एक मास पश्चात उसे निकालकर सूखी दीवार पर लेप किया जाता है। जम्मू तथा चम्बा में बंगद्वारी चित्रण की समृद्ध लोक परंपरा रही है।

चित्रण के विधि– विधान

अधिकतर यह चित्रकला कच्चे मकानों में ही मिलती है जहां उत्सवों, पर्वों तथा मेलों के समय द्वार–सज्जा के लिए भिन्न– भिन्न आकृतियाँ बनाई जाती हैं। गोबर तथा चिकनी मिट्‌टी से लिपाई की जाती है। उस पर देवदार के फूलों के पराग, चीड़, वृक्ष के फूलों के पराग (जो पीला होता है) या सफेद मिट्‌टी का बहुलता से प्रयोग किया जाता है। द्वार पर पार्श्व रेखा बनाकर भिन्न– भिन्न आकृतियाँ सूर्य, चाँद, तारे, पशु– पक्षी, पालकी, पहिये, पाँ, बिन्दिया, त्रिकोण, वर्ग, बेलबूटे, पतियाँ फूल, मानव आदि बनाये जाते हैं धार्मिक भावना से ऊपरी भाग के मध्य चिन्ह भी लगाये जाते हैं। मंगल कार्यों में आँगन या फर्श पर अल्पना डाला जाता है, इसे 'देऊ थला' भी कहा जाता है। अल्पना कच्चे– पक्के दोनों प्रकार के घरों में डाला जाता है। पहले गोबर की लिपाई की जाती है। सूखने पर श्वेत मिट्‌टी या आटे के प्रयोग से इसे बनाते हैं। यह चकौर या गोलाकार होता है। प्रायः– तीन– तीन रेखाओं को एक साथ खींचा जाता है।

चित्रण सामग्री

चित्रों की रचना में कलाकार के निजी कौशल के साथ एक विकसित चित्रण विधान की भी आवश्यकता होती है उस कार्य में कलाकार द्वारा प्रस्तुत विभिन्न पदार्थों में कागज का बहुत अधिक महत्व माना गया है। वस्तुतः भारत में चित्रण कला एक परंपरा के रूप में देशव्यापी विस्तार तभी संभव हो पाया जब 15वीं सदी के आरंभ के साथ हाथ से बने कागज के उद्योग का यहां प्र्याप्त विकास हो गया था।

खनिज रंग

प्राकृतिक रूप में पृथ्वी से प्राप्त ये रंग नर्म मिट्‌टी और सख्त पत्थर दोनों ही रूपों में होते हैं। प्रायः सख्त रंगों को श्रेष्ठ माना गया है। खनिज रंगों में 15 प्रकार के रंग होते हैं–

1.रामरज
2. मुल्तानी मिट्‌टी
3. गेरू
4. हिरौजी या हिरमिजी
5. हराढ़ाबा या संगसब्ज
6. लाजबर्द
7. हल्का नीला
8. शिंरगप
9.सोना
10.चाँदी
11. सुरमा
12. खड़िया
13. हरिताल
14. यानाफरंग

15. रांगा

रासायनिक रंग–

1. सफेदा
2. रिंदूर
3.गउरौली
4. काजल
5. जंगाल

जान्तविक रंग–

1. लाख
2. सोनकिरबा

वानस्पतिक रंग–

1. नील
2. कुमिदाना
3. रसोत
4. तूलिका

पहाड़ी लोक रूचि सदा ही प्राथमिक रंगों की रही है। इसका प्रभाव यहां के लोगों के पारंपरिक पहनावों में भी देखा जा सकता है। वस्तुतः लाल और पीला रंग अपने विभिन्न मिश्रणों में यहां सर्वप्रिय रहे है। लोक चित्रकारी के प्राथमिक रंगों का प्रयोग विशिष्ट लक्षणों के आधार पर हुआ है। परिणामत– रंग एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम बन गये है। कई बार शरीर के विभिन्न भागों के लिए अलग– अलग रंग प्रयोग में लाये गये है। भयावह और आंतकपूर्ण चरित्र काले रंग में उभारे जाते हैं और सोम्य चरित्र तथा देवी– देवताओं के अंकन में लाल और पीले रंगों या इनके मिश्रण का प्रयोग होता रहा है।

निर्माण की स्थानीय पद्धतियां

पश्चिमी हिमालय के भीतरी क्षेत्र में भी चित्रकारी का प्रचलन रहा है, परंतु स्थानीय भौगोलिक कारणों से वहां पर विद्या लाकप्रिय नहीं हो पाई है। हिमाच्छादित पर्वतीय उपत्यकाओं में बसे यहां के लोग अपने घरों को काष्ठ चित्रण से सुसज्जित करते रहे है जिसके लिए यहां सभी साधन सर्वसुलभ रहे है, फिर भी भीतरी क्षेत्र में अनेक स्थानों में चित्रकारी के कुछ रोचक उदाहरण देखे जा सकते है।
कुल्लू कला तीन रूपों में उपलब्ध है–

1.राजभावन सुल्तानपुर की दीवारों पर या स्यालकोटी कागज पर बनाये गये चित्र। ये चित्र सज्जा तथा धार्मिक भावना से बनाये गये है।
2.ग्रंथों में अंकन।
3. लोक चित्रकला परंपरागत भिति चित्र, अल्पणा आदि। मंगल कार्यों, पर्वों तथा मेले पर कच्चे मकानों में की गई सज्जा।

कॉंगड़ा शेली की तरह कुल्लू शैली भी प्रसिद्ध हुई। कुल्लू के राजाओं को चित्रकारी को आश्रय देने का श्रेय जाता है। कुल्लू शैली के चित्र कॉंगड़ा, चम्बा तथा बसोहली कलम से प्रभावित है। इनमें जड़ों, बीजों, फूल–पतियों से बने रंगों का प्रयोग किया जाता है। कुल्लू शैली में पशु, पक्षी, वृक्ष, बादल आदि के दृश्य प्रचुर मात्रा में दर्शाये गये हैं। पशुओं में मोर, हिरण,हाथी, बैल, गाय; वृक्षों मे सरू, पीपल, केला, वृक्षों से लिपटी लताएं; पक्षियों में तोता, चर्की, मैना, मोर– मोरनी, हंस के चित्रों का प्रयोग सज्जा देने के लिए किया गया है।

हिमाचल की शिल्पकलाओं का विवरण

किन्नौर के पंदिरों और गाँव के प्रवेश द्वारों के भिति चित्रों को देखकर यहां के कला कौशल पर मुग्ध रह जाना होता है। इतने दुर्गमख दूरस्थ और अंतरिम देश में भी कलाकारों का दृष्टिकोण रंगों और रेखाओं के प्रति इतना सजग रहा है। इस पर किसे आश्चर्य नहीं होगा। तिब्बती, लद्दाख और किन्नौर के बिहारों में शिक्षा लेने वाले शिक्षार्थियों में से ही किसी– किसी को चित्रकारी की दीक्षा दी जाती थी और उनमें से जो शिक्षार्थी अधिक योग्यता दिखाता उसे दूर– दूर चित्रकारी के लिए बुलाया जाता। चूना पुते हुए सूती कपड़े पर चमकदार रंगों से की हुई चित्रकारी का विशेष रिवाज था। बिहारों में ऐसे चित्र नक्शों और कैलेण्डरों की तरह लिपटे और सुरक्षित पड़े हुए है। स्थानीय भाषा में इन्हें थाका कहा जाता है।

गृह निर्माण– किन्नौर के गृह निर्माण में और बिहार और मंदिरों के निर्माण में भी यहां के कारीगरों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है। लकड़ी का काम विशेषतया प्रशंसनीय है। रामपुर के राजप्रसादों, सराहम कें मंदिरों के द्वार और चिने, कामरू, कोठी और कानन आदि के मंदिरों में यह सब देखा जा सकता है।

मंदिर– हिमाचल को देव भूमि कहते हैं अर्थात देवताओं की भूमि, इसलिए यहां अधिक मात्रा में मंदिर पाये जाते हैं।

1. शिव मंदिर मसरूर (जिला– काँगड़ा)
2.विश्वेश्वर महादेव मंदिर (बजौर जिला कुल्लू)
3.बैजनाथ मंदिर (जिला –कांगड़ा)
4.संध्या गायत्री तथा गौरी– शंकर
5. त्रिलाकनाथ मंदिर (जिला – लाहौल, स्पीति)
6. मुरलीधर मंदिर (जिला– कल्लू)
7.गौरीशंकर मंदिर (जिला – कुल्लू)
8. शक्तिदेवी मंदिर (जिला – चम्बा)
9.विष्णु मंदिर (जिला –कांगड़ा)
10.लक्षणा देवी मंदिर (जिला– चम्बा)
11.मृकुला देवी मंदिर (जिला–लौहल, स्पीति)
12.त्रिपुर सुंदरी मंदिर (जिला–कुल्लू)
13.हिड़िम्बा देवी मंदिर (जिला–कुल्लू)
14.त्रिपुगी नारायण मंदिर (जिला–कुल्लू)
15.आदिब्रह्म मंदिर (जिला–कुल्लू)
16.मनु ऋषि मंदिर (जिला–कुल्लू)
17. बौद्व बिहार ताबो (जिला–लाहौल, स्पीति)
18.बौद्ध बिहार (जिला–लाहौल स्पीति)
19.बिजली महादेव मंदिर (जिला–कुल्लू)
20.वशिष्ट मंदिर (जिला–कुल्लू)
21.ज्वालामुखी मंदिर (जिला–कांगड़ा)
22.बज्रेश्वरी मंदिर (जिला–कांगड़ा)
23.रामगोपाल मंदिर (जिला–कांगड़ा)
24.ब्रजराज मंदिर (जिला–कांगड़ा)
25. गधाककृष्ण मंदिर (जिला–कांगड़ा)
26.पंचवक्त महादेव मंदिर (जिला–मण्डी)

ग्राम – हिमाचल प्रदेश के लोग, नियम के अनुसार जीवनयापन के लिए कृषि पर निर्भर है और भेड़ों तथा बकरियों के बड़े– बड़े रेवड़ भी पालते हैं। 90 प्रतिशत से भी अधिक लोग गांवों में रहते हैं और प्रत्यक्ष व पराक्ष रूप से कृषि से ही अपना निर्वाह करते हैं। ऊँचाई वाले क्षेत्रों में प्रायः सीढ़ीनुमा खेत होते हैं। कांगड़ा, बल्ह और

पाबटा आदि प्रसिद्ध घाटियां है। लोग अपने पशुओं को चराने के लिए बाहर जंगलों में जाना पसंद करते हैं। वहां बैठकर बांसुरी पर मनमोहक धुनें बजाकर प्रसन्न होते हैं।

देवताओं– हिमाचल प्रदेश के ग्राम देवता केवल पूजा के साधन या साध्य नहीं है। लोग उनकी पूजा केवल इसलिए नहीं करते कि उनकी मनोकामनाएं पूरी हो, वरन् देवता लोागें के लिए इसलिए माना है कि देवता का एक संगठित विधान है जिसके अनुसार गांव का प्रबंध चलता है। लोग देवताओं को केवल उनकी चमत्कारी शक्ति के कारण नहीं मानते, बल्कि देवता की सुव्यवस्थित पद्धति है जिसके अंतर्गत देवता के अनुयायी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। देवता को लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार की शक्तियां प्राप्त है।

लोक– देवता– केलड्–देवता– कहा जाता है कि लाहौल में प्राचीन काल में केलड़ नामक देवता की पूजा की जाती थी, जिसे मानव की भेंट चढ़ाई जाती थी। इसके निमित प्रत्येक गांव बारी– बारी से एक व्यक्ति प्रस्तुत किया करता थां भेंट के निमित चुने गये व्यक्ति को पूजा से तीन दिन पूर्व खूब अच्छे– अच्छे भोजन कराये जाते तथा पूजा करने के उपरांत उसे मंदिर की एक कोठरी में बंद कर दिया जाता था और वह उसी में भूखा – प्यासा घूट–घूट कर मर जाता था।

गेफड़ देवता– लाहौल के अधिष्ठाना देव 'गेफड्' का वास चंद्रघाटी में स्थित सिसु नामक गांव की पृष्ठभूमि में स्थित इसी नाम के एक पर्वत शिखर पर माना जाता है। लाहौल के निवासियों के लिए गेफड् पर्वत शिखर का वही महत्व है जो शेष भारत में हिंदुओं के लिए भगवान शंकर का निवास स्थान कैलाश पर्वत का

काश्ठ कला– हिमाचल के भीतरी भागों में विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों में यथा– मिथल, छत्राहड़ी, भरमौर, मनाली, पराशर, करसोग, सराह, मूरंग, सराहन, बिल्वा आदि स्थानों में स्थित काष्ठ मंदिर वास्तुकला के अदभुत नमुने है। इसमें प्रयुक्त लकड़ी पर हुआ चित्रलेखन अपनी उपमा में बेजोड़ है। घरों के मुख्य द्वार पर स्तम्भों या शहतीरों पर, छत, बरामादों के अग्रभागों में काष्ठ– कलाकृतियों के नमूने सर्वत्र देखने में आते हैं। कांगड़ा, गरली– पालमपुर, कुल्लू, शिमला, चम्बा, भरमौर में रईसों के मकानों में भी ऐसे कार्य दिखाई देते हैं। प्रायः प्रत्येक घर के प्रेवशद्वार पर गणेश की मुर्ति उत्कीर्ण मिलती है। दायें– बायें, तोता– मोर आदि पक्षियों के चित्र है। स्तम्भों पर फुलकारी अंकन के अतिरिक्त अभियान पर जाते राजा, ग्राम देवता अथवा कुल देवता आदि के चित्र अंकित हुए। हाशियों में आभूषण, रेखाएं, बेल– पते फूल आदि के चित्रों का प्रयोग भी हुआ है।

वास्तुकला– यहां के पुराने दुर्ग, देव मंदिर, राजप्रसाद तथा अन्य भवन वास्तुकला के सुंदर नमूने प्रस्तुत करते हैं। निर्जन वाटिकाओं तथा वनखंडियों में टूटे– फूटे महल, किले आदि प्रचीन वैभव की याद दिलाते है। पुराने समय में जबकि वैज्ञानिक साधनों का पूर्ण अभाव था, दूरस्थ तथा ऊँचे स्थानों पर विशाल दैतयाकार दूर्ग बनाना सरल नहीं था। स्थानीय वास्तु कलाकारों द्वारा भवन निर्माण कला सौंदर्य नमूनों के अतिरिक्त दीवारों पर खनन के भी अनेक नमूने प्रस्तुत किये गये है। शिव मंदिर बैजनाथ तथा मसरूर का ठाकुद्वारा एक ही चट्टान को खोदकर बनाये गये हैं जो वास्तुकला के अद्भूत नमूने हैं। चंबा, मंडी, बिलासपुर, कुल्लू आदि क्षेत्रों में बने दूर्गम, दुर्भेद्य, विशाल मंदिरों में हुए कार्यों को देखकर आधुनिक इंजीनियर तथा वास्तुकला विशेषज्ञ चकित रह जाते है।

पहाड़ी रूमाल– पहाड़ी हस्त लोक शिल्प में पहाड़ी रूमाल का विशिष्ट स्थान है। ये रूमाल, चंबा, कांगड़ा,मंडी बिलासपुर, कुल्लु आदि क्षेत्रों में बनते रहे हैं। यह कला परंपरा बसेछली से चंबा में आई और वहां के राजा संसारचंद के काल में कांगड़ा ओर तत्पश्चात अन्य राज्यों में विकसित हुई। पहाड़ी रूमाल को 'चंबा रूमाल' के नाम से भी लोकप्रियता मिली है। ये रूमाल वर्गाकार कपड़े के बनाये जाते हैं इन पर रंग– बिरंगे पक्के रेश्मी धागों द्वारा रामलीला, कृष्णलीला, राग– रागनियों तथा पौराणिक चित्रों का मनोहारी चित्रण मिलता है।

हस्त कलाएं– कपड़े का प्रयोग रूमालों के अतिरिक्त थापड़ा (विशाल चादरनुमा कपड़ा), कोहरा (दीवार पर लटकाने वाला कपड़ा), तकिये के कबर, गिलाफ, चोलियां, टोपियां आदि की कशीदाकारी भी पहाड़ी हस्तशिल्पकला के अनुपम नमूने है। ये वस्तुएं प्रायः घर– गृहस्थी की शोभा बनाने के लिए बनाई जाती हैं। स्त्रियां महीनों तक इस कशीदाकारी में लगी रहती हैं। कुल्लू के शाल – दुशाले, लाहौल के नमदे, गलीचे आदि कला सौष्ठ तथा परंपरा में पहाड़ी चित्रकला के समान है। फटे– पुराने चिथड़े को नये वस्त्र में भरकर बनाई गई गुड़ियों के केश– विन्यास, मुखाकृतियां, रूप– सौन्दर्य तथा वेशभूषा बड़ी मोहक लगती है।

धातु कलाएं– छतराहड़ी, भरमौर, बजौरा तथा अन्य स्थानों पर स्थित कांस्य मूर्ति स्टूडियो में सुंदर एवं कलापूर्ण अनेक मूर्तियां बनी हैं। इनमें से कुछ हिमाचल के मंदिरों में प्रतिस्थापित की गई है। भले ही उनकी अवस्था अत्यंत जीर्ण– शीर्ण है। ऐसे उदाहरणों में हिमाचल में कांस्य मूर्तिकला स्कूलों की परंपरा का सहज बोध होता

है। चंबा क्षेत्रीय कांस्य मूर्तियों पर शिल्पकार 'गुग्गा' का नाम अंकित मिलता है मेरूवर्मन के आग्रह पर उसने अनेक मूर्तियां बनाई। अर्द्ध विष्णु की मूर्तियां, मूर्ति शिल्प के अनुठे एवं विचित्र उदाहरण है।

संदर्भ सूची

- काला, सतीश चंद्रः भारतीय चित्रकला
- कृष्णदास रायः भारत की चित्रकला (1939)
- गौरी शंकर, डॉ. सत्येन्द्रः लोक साहित्य का अध्ययन
- गुप्त, जगदीश चंद्रः प्रागैतिहासिक कालीन भारतीय चित्रकला
- झा, चिरंजी लाल (प्रो.) भारतीय चित्रकला का विकास
- झा, चिरंजी लालः चित्रकला के छः अंग
- दास, रामकृष्ण : भारतीय चित्रकला
- बोस, नंद लाल : भारतीय चित्रकला का सिंहवालोकन
- भारद्वाज,विनोद : समकालीन भारतीय चित्रकला
- लोकेश, चंद्र : भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास
- वर्मा, अविनाश बहादूर : भारतीय चित्रकला का इतिहास